जम्बूद्वीप : एक अध्ययन

(जैन सम्मत लोक-संरचना के सन्दर्भ में)

आर्यिका ज्ञानमती माताजी

ये तीन लोक अनादि-निधन—अकृत्रिम हैं। इसको बनाने वाला कोई भी ईश्वर-आदि नहीं है। इसके मध्यभाग में कुछ कम तेरह रज्जु लम्बी, एक रज्जु चौड़ी मोटी त्रसनारी है। इसमें सात रज्जु अधोलोक है एवं सात रज्जु ऊंचा ऊर्ध्वलोक है, तथा मध्य में निन्यानवे हजार चालीस योजन ऊंचा और एक रज्जु चौड़ा मध्यलोक है अर्थात् सुमेरु पर्वत एक लाख चालीस योजन ऊंचा है। इसकी नींव एक हजार योजन है जो कि चित्रा पृथ्वी के अन्दर है। चित्रा पृथ्वी के ऊपर के समभाग से लेकर सुमेरु पर्वत की ऊंचाई निन्यानवे हजार चालीस योजन है। वही इस मध्यलोक की ऊंचाई है। यह मध्यलोक थाली के समान चिपटा है और एक रज्जु तक विस्तृत है।

इसके ठीक बीचों-बीच में एक लाख योजन विस्तृत गोलाकार जम्बूद्वीप है। इस जम्बूद्वीप के ठीक बीच में सुमेरु पर्वत है। इस जम्बूद्वीप से दूने प्रमाण विस्तार वाला अर्थात् दो लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप को चारों तरफ से वेष्टित करने वाला लवण समुद्र है। आगे इस समुद्र को वेष्टित करके चार लाख योजन विस्तार वाला धातकीखण्डद्वीप है। उसको चारों ओर वेष्टित करके आठ लाख योजन विस्तार वाला कालोदधि समुद्र है। उसको चारों ओर से वेष्टित करके सोलह लाख योजन विस्तृत पुष्कर द्वीप है। ऐसे ही एक-दूसरे को वेष्टित करते हुए असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं।

अन्त के द्वीप का नाम स्वयंभूरमण द्वीप है, और अन्त के समुद्र का नाम स्वयंभूरमण समुद्र है।

पुष्कर द्वीप के बीचों-बीच में एक मानुषोत्तर पर्वत स्थित है जो कि चूड़ी के समान है। इसके निमित्त से इस पुष्कर द्वीप के दो भाग हो गये हैं। इसमें पूर्व अर्धपुष्कर में धातकीखण्ड के सदृश मेरु, कुलाचल, भरतक्षेत्र, गंगा-सिन्धु नदियों आदि की व्यवस्था है। यहीं तक मनुष्यों की उत्पत्ति है। मानुषोत्तर पर्वत के आगे केवल तिर्यंच और व्यन्तर आदि देवों के ही आवास हैं। अतः एक जम्बूद्वीप, दूसरा धातकीखण्ड, तीसरा आधा पुष्कर द्वीप—ऐसे मिलकर ढाई द्वीप होते हैं। इन ढाई द्वीपों में ही मनुष्यों की उत्पत्ति होती है और इनमें स्थित कर्मभूमि के मनुष्य ही कर्मों का नाशकर मुक्ति को प्राप्त कर सकते हैं, अन्यत्र नहीं।

इस प्रकार से तीनों लोकों का ध्यान करना चाहिए। धर्मध्यान के चार भेदों में अन्तिम 'संस्थान-विचय' नाम का धर्मध्यान है, जिसके अन्तर्गत तीन लोक के ध्यान करने का वर्णन है। इसी प्रकार विरक्त होते ही तीर्थंकर जैसे महापुरुष भी जिनका चिन्तवन करते हैं, ऐसी द्वादशानुप्रेक्षा में भी लोकानुप्रेक्षा के वर्णन में तीन लोक के स्वरूप के चिन्तवन का आदेश है।

'योजन'-प्रमाण

लोक-संरचना के सन्दर्भ में जैन आगमों में विविध क्षेत्रों, द्वीपों, सागरों आदि के परिमाणों के निरूपण में 'योजन' शब्द व्यवहृत हुआ है। योजन का प्रमाण शास्त्रीय आधार से क्या है?

इसका स्पष्टीकरण 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रन्थ के आधार से देखिए—

पुद्गल के सबसे छोटे टुकड़े को अणु-परमाणु कहते हैं।

ऐसे अनन्तानन्त परमाणुओं का	१ अवसन्नासन्न।
८ अवसन्नासन्न का	१ सन्नासन्न
८ सन्नासन्न का	१ त्रुटिरेणु
८ त्रुटिरेणु का	१ त्रसरेणु
८ त्रसरेणु का	१ रथरेणु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८ रथरेणु का—उत्तम भोगभूमियों के बाल का	१ अग्रभाग
उत्तम भोगभूमियों के बाल के ८ अग्रभागों का	मध्यम भोगभूमियों के बाल का १ अग्रभाग
मध्यम भोगभूमि के बाल के ८ अग्रभागों का	जघन्य भोगभूमियों के बाल का १ अग्रभाग
जघन्य भोगभूमियों के बाल के ८ अग्रभागों का	कर्मभूमियों के बाल का १ अग्रभाग
कर्मभूमियों के बाल के ८ अग्रभागों की	१ लीख
८ लीख का	१ जूं
८ जूं का	१ जव
८ जव का	१ अंगुल

इसे ही उत्सेधांगुल कहते हैं, इससे ५०० गुणा प्रमाणांगुल होता है।

६ उत्सेधांगुल	१ पाद
२ पाद का	१ बालिश्त
२ बालिश्त का	१ हाथ
२ हाथ का	१ रिक्कू
२ रिक्कू का	१ धनुष
२००० धनुष का	१ कोस
४ कोस का	१ लघुयोजन
५०० योजन का	१ महायोजन

एक महायोजन में २००० कोस होते हैं।

नोट—२००० धनुष का १ कोस है। अतः १ धनुष में ४ हाथ होने से ८००० हाथ का १ कोस हुआ एवं १ कोस में २ मील मानने से ४००० हाथ का एक मील होता है।

अंगुल के तीन भेद हैं—उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल।

बालाग्र, लिक्षा, जूं और जौ से निर्मित जो अंगुल होता है वह 'उत्सेधांगुल' है।

पांच सौ उत्सेधांगुल प्रमाण एक 'प्रमाणांगुल' होता है, जिस-जिस काल में भरत और ऐरावत क्षेत्र में जो मनुष्य हुआ करते हैं उस-उस काल में उन्हीं-उन्हीं मनुष्यों के अंगुल का नाम 'आत्मांगुल' है।

उपर्युक्त उत्सेधांगुल से ही उत्सेध कोस एवं चार उत्सेध कोस से एक योजन बनता है। यह लघुयोजन है।

उत्सेधांगुल से—देव, मनुष्य, तिर्यंच एवं नारकीयों के शरीर की ऊंचाई का प्रमाण और चारों प्रकार के देवों के निवास स्थान व नगर आदि का प्रमाण होता है।

प्रमाणांगुल और प्रमाण-योजन से—द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड, सरोवर, वगती और भरतक्षेत्र आदि इन सबका प्रमाण जाना जाता है।

आत्मांगुल से—झारी, कलश, दर्पण, वेणु, भेरी, युग, शय्या, शकट, हल, मूसल, शक्ति, तोमर, बाण, नालि, अक्ष, चामर, दुंदुभि, पीठ, छत्र, मनुष्यों के निवास नगर और उद्यान आदि का प्रमाण जाना जाता है।

एक महायोजन में २००० कोस होते हैं। एक कोस में २ मील मानने से १ महायोजन में ४००० मील हो जाते हैं। अत: ४००० मील के हाथ बनाने के लिए १ मील सम्बन्धी ४००० हाथ से गुणा करने पर ४०००×४०००=१६०००००० अर्थात् एक महायोजन में १ करोड़ ६० लाख हाथ हुए।

वर्तमान में रेखिक माप में १७६० गज का एक मील मानते हैं। यदि एक गज में २ हाथ मानें तो १७६०×२=३५२० हाथ का एक मील हुआ। पुनः उपर्युक्त एक महायोजन के हाथ १६०००००० में ३५२० हाथ का भाग देने से १६००००००÷३५२०—४५४५$\frac{५}{११}$ मील हुए।

परन्तु इस पुस्तक में स्थूल रूप से व्यवहार में १ कोस में २ मील की प्रसिद्धि के अनुसार सुविधा के लिए सर्वत्र महायोजन के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२००० कोस को मील से गुणा कर एक महायोजन ४००० मील मानकर उसी से ही गुणा किया गया है।

आजकल कुछ लोग ऐसा कह दिया करते हैं कि पता नहीं, आचार्यों के समय कोस का प्रमाण क्या था। और योजन का प्रमाण भी क्या था !

किन्तु जब परमाणु से लेकर अवसन्नासन्न आदि परिभाषाओं से आगे बढ़ते हुए जघन्य भोगभूमि के बाल के ८ अग्रभागों का एक कर्मभूमि का बालाग्र होता है, तब इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भोगभूमियों के बाल की अपेक्षा चतुर्थकाल के कर्मभूमि के प्रारम्भ का भी बाल मोटा था। पुनः आज पंचम काल के मनुष्यों का बाल तो उससे मोटा ही होगा। आज के अनुसंधानप्रिय विद्वानों का कर्त्तव्य है कि आज के बाल की मोटाई के हिसाब से ही आगे के अंगुल, पाद, हाथ आदि बनाकर योजन के हिसाब को समझने की कोशिश करें।

'जम्बूद्वीप-पण्णत्ति' की प्रस्तावना के २०वें पेज पर श्री लक्ष्मीचन्द जैन एम० एस-सी० ने कुछ स्पष्टीकरण किया है, वह पढ़ने योग्य है। देखिए—

इस योजन की दूरी आजकल के रेखिक माप में क्या होगी ?

यदि हम २ हाथ = १ गज मानते हैं तो स्थूलरूप से १ योजन ८०,०००,०० गज के बराबर अथवा ४५४५.४५ मील (MILES) के बराबर प्राप्त होता है।

यदि हम १ कोस को आजकल के २ मील के समान मान लें तो १ योजन ४००० मील (MILES) के बराबर प्राप्त होता है।

कर्मभूमि के बालाग्र का विस्तार आजकल के सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा किये गये मापों के अनुसार १/५०० इंच से लेकर १/२०० इंच तक होता है। यदि हम इस प्रमाण के अनुसार योजन का माप निकालें तो उपर्युक्त प्राप्त प्रमाणों से अत्यधिक भिन्नता प्राप्त होती है। बालाग्र का प्रमाण १/५०० इंच मानने पर १ योजन ४९६४८.४८ मील प्रमाण आता है। कर्मभूमि का बालाग्र १.३००इंच मानने से योजन ८२७४७.४७ मील के बराबर पाया जाता है। बालाग्र को १।२०० इंच प्रमाण मानने से योजन का प्रमाण और भी बढ़ जाता है।

इसलिए एक महायोजन में स्थूल रूप में ४००० मील समझना चाहिए, किन्तु यह लगभग प्रमाण है। वास्तव में एक महायोजन में इससे अधिक ही मील होंगे ऐसा हमारा अनुमान है। इस प्रकार से योजन आदि के विषय में तिलोयपण्णत्ति, जम्बूद्वीपपण्णत्ति, त्रिलोकसार, श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थों में दृढ़ श्रद्धा रखते हुए अपने सम्यक्त्व को सुरक्षित रखना चाहिए। जब तक केवली, श्रुतकेवली के चरणो का सान्निध्य प्राप्त न हो तब तक अपने मन को चंचल और अश्रद्धालु नहीं करना चाहिए।

जम्बूद्वीप

इस मध्यलोक में सबसे पहले द्वीप का नाम है जम्बूद्वीप। यह एक लाख योजन विस्तृत है और गोल है। इसमें दक्षिण से लेकर उत्तर तक छह पर्वत हैं, जो कि पूर्व-पश्चिम लम्बे हैं। उनके नाम हैं—हिमवान, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी। इन पर्वतों पर एक-एक सरोवर बने हुए हैं उनके नाम हैं पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक। इन सरोवरों के मध्य पृथ्वी-कायिक जाति के बड़े-बड़े कमल हैं। उन कमलों पर भवन बने हुए हैं, जिनमें क्रम से श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नाम वाली देवियां निवास करती हैं।

छह कुलपर्वतों के निमित्त से इस जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र हो गये हैं। जिनके नाम हैं—भरत, हेमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत। हिमवान् पर्वत पर जो पद्म सरोवर है उसके पूर्व व पश्चिम भाग से क्रमशः गंगा-सिन्धु नदी निकलती हैं जो नीचे गंगा-सिन्धु कुण्ड में गिरकर आगे बढ़ती हुई विजयार्ध पर्वत के गुफा-द्वार से बाहर आ जाती हैं और आगे बढ़कर बहती हुई क्रम से पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं। भरत क्षेत्र के बीच में पूर्व-पश्चिम लम्बा एक विजयार्ध पर्वत है। इसमें तीन कटनियां हैं। प्रथम कटनी पर अभियोग्य जाति के देवों का निवास है। दूसरी कटनी पर विद्याधर मनुष्यों का आवास है, और तृतीय कटनी पर ग्यारह कूट हैं जिसमें पूर्व दिशा की तरफ के कूट पर जिनमन्दिर है, शेष कूटों पर देवों के भवन बने हुए हैं।

छह खण्ड-व्यवस्था

भरत क्षेत्र के बीच में विजयार्ध पर्वत के होने से और हिमवान् पर्वत के सरोवर से गंगा-सिन्धु नदियों के निकलने से इस भरत क्षेत्र के छह खण्ड हो जाते हैं। इनमें से समुद्र की तरफ का बीच का भाग आर्य खण्ड कहलाता है, शेष पांच म्लेच्छ खण्ड माने जाते हैं। उत्तर की तरफ मध्य के म्लेच्छ खण्ड के बीचों-बीच में एक वृषाभाचल पर्वत है जिस पर चक्रवर्ती अपनी प्रशस्ति लिखते हैं। मध्य के आर्यखण्ड में ही हम लोगों का निवास है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य क्षेत्रों की व्यवस्था

इसी पद्म सरोवर के उत्तर भाग से रोहितास्या नदी निकलती है जो कि नीचे गिरकर हैमवत क्षेत्र में बहती हुई पश्चिम समुद्र में मिल जाती है। महाहिमवान् पर्वत के महापद्म सरोवर के दक्षिण भाग से रोहित नदी निकलकर हैमवत क्षेत्र में बहती हुई पूर्व समुद्र में प्रवेश कर जाती है। इसी तरह आगे-आगे के क्षेत्रों में क्रम से हरित-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नारी-नरकान्ता, सुवर्णकूला-रूप्यकूला और रक्ता-रक्तोदा ये दो-दो नदियां बहती हैं। भरत क्षेत्र के समान ऐरावत क्षेत्र में भी छह खण्ड-व्यवस्था होती है।

पर्वतों के कूट

हिमवान् पर्वत पर ११ कूट हैं, महाहिमवान् पर ८, निषध पर ६, नील पर ६, रुक्मि पर ८ और शिखरी पर ११ कूट हैं। इन सभी पर्वतों पर पूर्व दिशा के कूटों पर जिनमन्दिर हैं और शेष पर देवों के और देवियों के भवन बने हुए हैं। इन भवनों में भी गृह-चैत्यालय के समान जिन चैत्यालय हैं।

हैमवत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था है, हरिक्षेत्र में मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था है। ऐसे ही रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि की एवं हैरण्यवत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था है।

विदेह क्षेत्र

इस विदेह क्षेत्र के बीचों-बीच में सुमेरु पर्वत है। उत्तर के नील पर्वत के सरोवर से सीता नदी निकलकर पूर्व दिशा में बहती हुई पूर्व समुद्र में प्रवेश कर जाती है। वैसे ही निषध पर्वत के सरोवर से सीतोदा नदी निकलकर पश्चिम में बहती हुई पश्चिम समुद्र में प्रविष्ट हो जाती है। जम्बूद्वीप के बीचोंबीच में स्थित सुमेरु पर्वत से विदेह के पूर्व और पश्चिम ऐसे दो भेद हो गये हैं। पुनः सीता-सीतोदा नदियों के निमित्त से दक्षिण-उत्तर ऐसे दो-दो भेद हो जाते हैं। पूर्व विदेह के उत्तर भाग में भद्रसाल की वेदी, चार वक्षार पर्वत और तीन विभंगा नदियों के निमित्त से आठ विदेह हो गये हैं। ऐसे ही पूर्व विदेह के दक्षिण भाग में आठ विदेह एवं पश्चिम विदेह के दक्षिण-उत्तर भाग के आठ-आठ विदेह होने से बत्तीस विदेह हो जाते हैं। इन बत्तीसों विदेह क्षेत्रों में भी छह-छह खण्ड माने हैं, अन्तर इतना ही है कि वहां शाश्वत कर्म-भूमि रहती है, सदा चतुर्थ काल के आदि काल जैसा काल ही वर्तमान रहता है और यहां भरत क्षेत्र व ऐरावत क्षेत्र के आर्यखण्ड में षट्काल का परिवर्तन चलता रहता है। सीता नदी के उत्तरभाग में विदेह क्षेत्र में सीमन्धर भगवान् का समवसरण स्थित है। इसी नदी के दक्षिण भाग में युगमन्धर तीर्थंकर विद्यमान हैं। सीतोदा नदी के दक्षिण में बाहु जिनेन्द्र एवं सीतोदा के उत्तर भाग में सुबाहु जिनेन्द्र का सतत विहार होता रहता है।

जंबूवृक्ष व शाल्मलीवृक्ष

इस विदेह क्षेत्र में मेरु के दक्षिण, उत्तर में देवकुरु और उत्तरकुरु नाम से उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था है। इस उत्तरकुरु में ईशान दिशा में जंबूवृक्ष नाम का एक महावृक्ष है जो कि पृथ्वीकायिक है इसकी उत्तरी शाखा पर एक जिनमंदिर है। ऐसे ही देवकुरु में नैर्ऋत्य दिशा में शाल्मलीवृक्ष है, उस पर भी दक्षिणी शाखा पर एक जिनमंदिर है। ये दोनों महावृक्ष रत्नों से निर्मित होते हुए भी पत्ते, फल और फूलों से सुन्दर हैं। वायु के झकोरे से इनकी शाखाएँ हिलती रहती हैं और इनसे उत्तम सुगंध भी निकलती रहती है। ये वृक्ष भी अकृत्रिम होने से अनादिनिधन हैं।

गजदंत पर्वत

सुमेरु पर्वत की विदिशाओं में एक तरफ से सुमेरु को छूते हुए और दूसरी तरफ निषध व नील पर्वत को छूते हुए ऐसे चार गजदंत पर्वत हैं। इन पर भी कूटों पर देवों के भवन हैं और सुमेरु के निकट के कूट पर जिन मंदिर है।

विशेष—सभी पर्वतों की तलहटी में, ऊपर में चारों तरफ, सरोवर, नदी, कूट, देवभवन और जिनमंदिरों के भी चारों तरफ वेदिकाओं से वेष्टित सुन्दर बगीचे बने हुए हैं।

सुमेरु पर्वत

इस जंबूद्वीप के बीच में विदेह क्षेत्र है, उसके ठीक मध्य में सुमेरु पर्वत स्थित है। यह एक लाख चालीस योजन ऊंचा है। इसकी नींव पृथ्वी में एक हजार योजन है अतः यह इस चित्रा भूमि से निन्यानवे हजार योजन ऊंचा है। पृथ्वी पर इस पर्वत की चौड़ाई दस हजार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योजन प्रमाण है। पृथ्वी-तल पर ही भद्रशाल वन है जो कि पूर्व-पश्चिम में २२००० योजन विस्तृत है और दक्षिण-उत्तर में २५० योजन प्रमाण है। इस वन से पांच सौ योजन ऊपर जाकर नंदनवन है जो कि अंदर में पांच सौ योजन तक कटनी रूप है। इस वन से साढ़े बासठ हजार योजन ऊपर जाकर सोमनस वन है जो पांच सौ योजन की कटनी रूप है। इससे आगे छत्तीस हजार योजन पर पांडुक वन है जो कि चार सौ चौरानवे योजन प्रमाण कटनी रूप है। इस पर्वत की चलिका प्रारंभ में बारह योजन है और घटते हुए अग्रभाग में चार योजन मात्र रह गई है। इन भद्रशाल आदि वनों में आम्र, अशोक, चंपक आदि नाना प्रकार के वृक्ष सतत फलों और फूलों से शोभायमान रहते हैं। चारण-ऋद्धिधारी मुनि, देवगण और विद्याधर हमेशा यहां विचरण करते रहते हैं।

भद्रशाल, नन्दन, सोमनस और पांडुक इन चारों वनों की चारों दिशाओं में एक-एक चैत्यालय होने से मेरु के सोलह चैत्यालय हो जाते हैं। ऊपर के पांडुकवन में चारों ही विदिशाओं में चार शिलाएँ हैं जिनके पांडुक, पांडुकंबला, रक्ता और रक्तकंबला ऐसे सुन्दर नाम हैं।

पांडुक शिला पर भरत क्षेत्र के जन्मे हुए तीर्थंकरों का जन्माभिषेक-महोत्सव मनाया जाता है। पांडुककंबला शिला पर पश्चिम विदेह के तीर्थंकरों का, रक्तशिला पर पूर्व विदेह के तीर्थंकरों का और रक्तकंबला शिला पर ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है।

सुमेरु पर्वत का माहात्म्य

जैन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक कृतयुग में २४ अवतार 'तीर्थंकर' माने गये हैं। हम और आप जैसे क्षुद्र प्राणियों में से कोई भी प्राणी सोलह कारण भावनाओं के बल से इस अवतार के योग्य तीर्थंकर प्रकृति नामक एक कर्म प्रकृति का बन्ध करके तीर्थंकर महापुरुष के रूप में अवतार ले सकता है और किसी भी कृतयुग के चौबीसी में अपना नाम लिखा सकता है। यह महापुरुष तीर्थंकर रूप में अवतार लेकर अपना पूर्णज्ञान प्रकट करके इसी भव से परमपिता परमेश्वर के पद को प्राप्त कर लेता है, पुनः नित्य निरंजन सिद्ध परमात्मा होकर सदा-सदा के लिए शाश्वत परमानन्द सुख का अनुभव करता रहता है।

ऐसे-ऐसे असंख्यों अवतार पुरुषों का जब-जब जन्म होता है तब-तब इन्द्रों के आसन कम्पित हो उठते हैं वे भक्ति में विभोर हो अपने ऐरावत हाथी पर चढ़कर इस मर्त्य लोक में आ जाते हैं और उस नवजात शिशु को प्रसूतिगृह से लाकर इसी सुमेरु पर्वत पर ले जाकर असंख्य देवों के साथ महावैभवपूर्वक १००८ कलशों से जन्माभिषेक करके जन्म-कल्याणक उत्सव मनाते हैं। इस युग में भगवान् वृषभदेव से लेकर महावीर-पर्यन्त चौबीस अवतार हुए हैं। इन सबका भी जन्म-महोत्सव इसी सुमेरु पर्वत पर मनाया गया है। यही कारण है कि यह पर्वत अगणित तीर्थंकरों के जन्माभिषेक से सर्वोत्कृष्ट तीर्थ माना जाता है। यह देव, इन्द्र मनुष्य, विद्याधर और महामुनियों से नित्य ही वंद्य है, अतः इसका माहात्म्य अचिन्त्य है।

यह पर्वत यहां से (वर्तमान उपलब्ध विश्व से) लगभग २०,००,००,००० (बीस करोड़) मील की दूरी पर विदेह क्षेत्र में विद्यमान है। यह पर्वत पूरे ब्रह्माण्ड में अर्थात् तीनों लोकों में सबसे ऊंचा और महान् है। उसी का प्रतीक एक सुमेरु पर्वत ८१ फुट ऊंचा हस्तिनापुर में निर्मित हुआ है।

चार गोपुर-द्वार

इस जम्बूद्वीप के चारों तरफ वेदी का 'परकोटा' है। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर, इन चारों दिशाओं में एक-एक महाद्वार है। इनके नाम हैं—विजय, वैजयन्त, जयंत और अपराजित।

जम्बूद्वीप के जिन चैत्यालय

इस जम्बूद्वीप में अठहत्तर अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं। सुमेरु के चार, वन सम्बन्धी १६+छह, कुलाचल के ६+चार, गजदंत के ४+सोलह, वक्षार के १६+चौंतीस, विजयार्ध के ३४+जम्बूशालमलिवृक्ष के २=७८, ये जम्बूद्वीप के अठहत्तर अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं।

इस जम्बूद्वीप में हम कहां हैं?

यह भरत क्षेत्र, जम्बूद्वीप के १९०वें भागअर्थात् ५२६ ६/१९ योजन प्रमाण है। इसके छह खंडों में जो आर्यखंड हैं उसका प्रमाण लगभग निम्न प्रकार है:

दक्षिण का भरत क्षेत्र २३८ ६/१० योजन का है। पद्म सरोवर की लम्बाई १००० योजन है तथा गंगा और सिंधु नदियां ५-५ सौ योजन पर्वत पर पूर्व-पश्चिम बहकर दक्षिण में मुड़ती हैं। यह आर्यखण्ड उत्तर-दक्षिण में २३८ योजन चौड़ा है। पूर्व-पश्चिम में १०००+५००

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

+५००=२००० योजन लम्बा है। इनको आपस में गुणा करने से २३८ × २०००=४,७६,०००वर्ग योजन प्रमाण आर्य खण्ड का क्षेत्रफल हो जाता है। अथवा ४,७६,००० × ४०,००,०००=१,९०,४०,००,००,००० 'एक लाख, नव्वे हजार, चार सौ करोड़ वर्ग-कोश' प्रमाण क्षेत्रफल हो जाता है।

आर्यखण्ड

इस आर्यखण्ड के मध्य में अयोध्या नगरी है। इस अयोध्या के दक्षिण में ११९ योजन की दूरी पर लवण समुद्र की वेदी है और उत्तर की तरफ इतनी ही दूर पर विजयार्ध पर्वत की वेदिका है। अयोध्या से पूर्व में १००० योजन की दूरी पर गंगा नदी की तट वेदी है अर्थात् आर्यखण्ड की दक्षिण दिशा में लवण समुद्र, उत्तर दिशा में विजयार्ध, पूर्व दिशा में गंगा नदी एवं पश्चिम दिशा में सिंधु नदी हैं। ये चारों आर्य खण्ड की सीमा रूप हैं।

अयोध्या से दक्षिण में लगभग ४,७६,००० कोश (चार लाख छहत्तर हजार) कोस जाने से लवण समुद्र है और उत्तर में इतना ही जाने से विजयार्ध पर्वत है। उसी प्रकार अयोध्या से पूर्व में ४०,००,००० (चालीस लाख) कोस दूर गंगानदी तथा पश्चिम में इतनी ही दूर सिन्धु नदी है।

जैनाचार्यों के कथनानुसार आज का सारा विश्व इस आर्यखण्ड में ही है। हम और आप सभी इस आर्यखण्ड के ही भारतवर्ष में रहते हैं। वर्तमान में जो गंगा-सिन्धु नदियां दिखती हैं, और जो महासमुद्र, हिमालय पर्वत आदि हैं, वे सब कृत्रिम हैं। अकृत्रिम नदी, समुद्र और पर्वतों से अतिरिक्त ये सभी उपनदी, उपसमुद्र, उपपर्वत आदि हैं। इन सभी विषयों का विशेष विस्तार समझने के लिए तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थराजवार्तिक, जम्बूद्वीपपण्णत्ति, त्रिलोकभास्कर आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिए।

भूभ्रमण-खण्डन

आज के भूगोल के अनुसार कुछ विद्वान् पृथ्वी को घूमती हुई मान रहे हैं। उसके विषय में तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक ग्रन्थ में तृतीय अध्याय में बहुत अच्छा विवेचन है, वह द्रष्टव्य है—

कोई आधुनिक विद्वान् कहते हैं कि जैनियों की मान्यता के अनुरूप यह पृथ्वी वलयाकार चपटी गोल नहीं है, किन्तु यह पृथ्वी गेंद या नारंगी के समान गोल आकार की है। यह भूमि स्थिर भी नहीं है। हमेशा ही ऊपर-नीचे घूमती रहती है, तथा सूर्य, चन्द्र, शनि, शुक्र आदि ग्रह, अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्रचक्र, मेरु के चारों तरफ प्रदक्षिणा रूप से अवस्थित है, घूमते नहीं हैं। यह पृथ्वी एक विशेष वायु के निमित्त से ही घूमती है। इस पृथ्वी के घूमने से ही सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि का उदय, अस्त आदि व्यवहार बन जाता है, इत्यादि।

दूसरे कोई वादी पृथ्वी का हमेशा अधोगमन ही मानते हैं एवं कोई-कोई आधुनिक पंडित अपनी बुद्धि में यों मान बैठे हैं कि पृथ्वी दिन पर दिन सूर्य के निकट होती चली जा रही है। इसके विरुद्ध कोई-कोई विद्वान प्रतिदिन पृथ्वी को सूर्य से दूरतम होती हुई मान रहे हैं। इसी प्रकार कोई-कोई परिपूर्ण जल-भाग से पृथ्वी को उदित हुई मानते हैं।

किन्तु उक्त कल्पनाएं प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं होती हैं। थोड़े ही दिनों में परस्पर एक-दूसरे का विरोध करने वाले विद्वान् खड़े हो जाते हैं और पहले-पहले के विज्ञान या ज्योतिष यंत्र के प्रयोग भी युक्तियों द्वारा बिगाड़ दिये जाते हैं।

इसका उत्तर जैनाचार्य इस प्रकार देते हैं—

भूगोल का वायु के द्वारा भ्रमण मानने पर तो समुद्र, नदी, सरोवर आदि के जल की जो स्थिति देखी जाती है, उसमें विरोध आता है।

जैसे कि पाषाण के गोले को घूमता हुआ मानने पर अधिक जल ठहर नहीं सकता है। अतः भू अचल ही है। वह भ्रमण नहीं करती है। पृथ्वी तो सतत घूमती रहे और समुद्र आदि का जल सर्वथा जहां का तहां स्थिर रहे, यह बन नहीं सकता। अर्थात् गंगा नदी जैसे हरिद्वार से कलकत्ता की ओर बहती है, पृथ्वी के गोल होने पर उल्टी भी बह जाएगी। समुद्र और कुओं के जल गिर पड़ेंगे। घूमती हुई वस्तु पर अधिक जल नहीं ठहर कर गिरेगा ही गिरेगा।

दूसरी बात यह है कि—पृथ्वी स्वयं भारी है। अधःपतन स्वभाव वाले बहुत से जल, बालू, रेत आदि पदार्थ हैं जिनके ऊपर रहने से नारंगी के समान गोल पृथ्वी हमेशा घूमती रहे और पे सब ऊपर ठहरे रहें—पर्वत, समुद्र, शहर, महल आदि जहां के तहां बने रहें—यह बात असंभव है।

यहां पुनः कोई भूभ्रमणवादी कहते हैं कि घूमती हुई इस गोल पृथ्वी पर समुद्र आदि के जल को रोके रहने वाली एक वायु है जिसके निमित्त से समुद्र आदि ये सब जहां के तहां ही स्थिर बने रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस पर जैनाचार्यों का उत्तर—जो प्रेरक वायु इस पृथ्वी को सर्वदा घुमा रही है, वह वायु इन समुद्र आदि को रोकने वाली वायु का घात नहीं कर देगी क्या ? वह बलवान प्रेरक वायु तो इस धारक वायु को घुमाकर कहीं की कहीं फेंक देगी। सर्वत्र ही देखा जाता है कि यदि आकाश में मेघ छाये हैं और हवा जोरों से चलती है, तब उस मेघ को धारण करने वाली वायु को विध्वंस करके मेघ को तितर-बितर कर देती है, वे बेचारे मेघ नष्ट हो जाते हैं, या देशांतर में प्रयाण कर जाते हैं। उसी प्रकार अपने बलवान वेग से हमेशा भूगोल को सब तरफ से घुमाती हुई जो प्रेरक वायु है, वह वहां पर स्थिर हुए समुद्र, सरोवर आदि को धारने वाली वायु को नष्ट-भ्रष्ट कर ही देगी। अतः बलवान प्रेरक वायु भूगोल को हमेशा घुमाती रहे और जल आदि की धारक वायु वहां बनी रहे, यह नितांत असंभव है।

पुनः भूभ्रमणवादी कहते हैं कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। अतएव सभी भारी पदार्थ भूमि के अभिमुख होकर ही गिरते हैं। यदि भूगोल पर से जल गिरेगा तो भी वह पृथ्वी की ओर ही गिरकर वहां का वहां ही ठहरा रहेगा। अतः वे समुद्र आदि अपने-अपने स्थान पर ही स्थिर रहेंगे।

इस पर जैनाचार्य कहते हैं कि—आपका कथन ठीक नहीं है। भारी पदार्थों का तो नीचे की ओर गिरना ही दृष्टिगोचर हो रहा है। अर्थात्—पृथ्वी में एक हाथ का लम्बा-चौड़ा गड्ढा करके उस मिट्टी को गड्ढे के एक ओर ढलाऊ ऊंची कर दीजिये। उस पर गेंद रख दीजिये, वह गेंद नीचे की ओर गड्ढे में ही ढुलक जायेगी। जबकि ऊपरी भाग में मिट्टी अधिक है तो विशेष आकर्षण शक्ति के होने से गेंद को ऊपरी देश में ही चिपका रहना चाहिए था, परन्तु ऐसा नहीं होता है। अतः कहना पड़ता है कि भले ही पृथ्वी में आकर्षण शक्ति होवे, किन्तु उस आकर्षण शक्ति की सामर्थ्य से समुद्र के जलादिकों का घूमती हुई पृथ्वी से तिरछा या दूसरी ओर गिरना नहीं रुक सकता है।

जैसे कि प्रत्यक्ष में नदी, नहर आदि का जल ढलाऊ पृथ्वी की ओर ही यत्र-तत्र किधर भी बहता हुआ देखा जाता है, और लोहे के गोलक, फल आदि पदार्थ स्वस्थान से च्युत होने पर (गिरने पर) नीचे की ओर ही गिरते हैं। इस प्रकार जो लोग आर्यभट्ट, या इटली-यूरोप आदि देशों के वासी विद्वानों की पुस्तकों के अनुसार पृथ्वी का भ्रमण स्वीकार करते हैं और उदाहरण देते हैं कि—जैसे अपरिचित स्थान में नौका में बैठा हुआ कोई व्यक्ति नदी पार कर रहा है, उसे नौका तो स्थिर लग रही है और तीरवर्ती वृक्ष-मकान आदि चलते हुए दिख रहे हैं, परन्तु यह भ्रम मात्र है, तद्वत् पृथ्वी की स्थिरता की कल्पना भी भ्रम-मात्र है।

इस पर जैनाचार्य कहते हैं कि—साधारण मनुष्य को भी थोड़ा-सा ही घूम लेने पर आंखों में घूमनी आने लगती है, कभी-कभी खण्ड देश में अत्यल्प भूकम्प आने पर भी शरीर में कंपकँपी, तथा मस्तक में भ्रान्ति होने लग जाती है। तो यदि डाकगाड़ी के वेग से भी अधिक वेग रूप पृथ्वी की चाल मानी जाएगी, तो ऐसी दशा में मस्तक, शरीर, पुराने गृह, कूपजल आदि की क्या अवस्था होगी—इस पर विद्वान् लोग ही विचार करें।

तिलोयपण्णत्ति, हरिवंश पुराण एवंजम्बूदीव-पण्णत्ति के आधार पर जम्बूद्वीप में क्षेत्र नगर आदि का प्रमाण—

(१) महाक्षेत्र	(७)	भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात वर्ष अर्थात् क्षेत्र हैं।
(२) कुरुक्षेत्र	(२)	देवकुरु व उत्तरकुरु
(३) कर्मभूमि	(३४)	भरत ऐरावत व ३२ विदेह
(४) भोगभूमि	(६)	हैमवत, हरि, रम्यक व हैरण्यवत तथा दोनों कुरुक्षेत्र
(५) आर्यखण्ड	(३४)	प्रति कर्मभूमि एक
(६) म्लेच्छ खण्ड	(१७०)	प्रति कर्मभूमि पांच
(७) राजधानी	(३४)	प्रति कर्मभूमि एक
(८) विद्याधरों के नगर	(३१५०)	भरत व ऐरावत के विजयार्धों में से प्रत्येक पर ११५ तथा ३२ विदेहों के विजयार्धों में प्रत्येक पर ११०।

(—श्री जिनेन्द्र वर्णी द्वारा रचित जैनेन्द्र सिद्धान्त के आधार पर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org